अभिमन्यु

हैण्डलूम, कुर्सी बुनाई, मोटर वाइंडिंग, टेलिफोन ऑपरेटर... अन्ततः बन गए एक शिक्षक

नेहा रूपड़ा

महाभारत के एक प्रसिद्ध पात्र का नाम भी अभिमन्यु है। कुरुक्षेत्र में युद्ध के दौरान अभिमन्यु को परास्त करने के लिए कौरवों ने अपनी पूरी ताकत झोंक दी थी। अन्ततः जब कोई प्रपंच काम न आया तो कौरवों ने छल से अभिमन्यु को परास्त किया।

मैं जिस अभिमन्यु के बारे में बात कर रही हूँ, उसके साथ भी जीवन ने कई छल किए, कई उतार-चढ़ाव आए मगर उन्हें कोई परास्त नहीं कर पाया। हर बार यह अभिमन्यु दुगनी ताकत से उठ खड़ा होता और इस तरह से परिस्थितियों का सामना किया कि अन्ततः परिस्थितियों ने ही इनके सामने घुटने टेक दिए। अपनी दृष्टिहीनता को कभी किसी भी परिस्थिति में बाधा नहीं बनने दिया। सबसे मज़ेदार बात तो यह है कि अभिमन्यु हमेशा जीवन की धारा के साथ बहते चले गए, जहाँ जो मिला उसमें ही अपने लिए सम्भावना तलाशने की कोशिश की। कभी किसी चीज़ का शोक नहीं मनाया, जो भी मिला, उसे स्वीकार किया और आगे बढ़ते चले गए।

जानिए ऐसे शिक्षक के बारे में जो दृष्टिहीन हैं पर उन शिक्षकों से ज़्यादा देख पाते हैं जिनके पास आँखें हैं। यहाँ से आगे का सफरनामा खुद अभिमन्यु के शब्दों में पेश है जो उनके साथ लिए एक लम्बे साक्षात्कार के दौरान दर्ज़ किए गए थे।

मेरी 6 बहनें और 1 भाई हैं। मैं जब कक्षा 5वीं में पढ़ता था तब थोड़ी-थोड़ी समस्या समझ में आई, पर न मैंने ध्यान दिया और न ही घर वालों ने। फिर जब 6वीं में एडमिशन लिया तो समस्या काफी बढ़ गई थी, पढ़ने में काफी तकलीफ होती थी। तब घर वालों ने डॉक्टर को दिखाया तो पता चला कि विज़न की समस्या है, रेटिना से जुड़ी कुछ समस्या है जो बचपन से ही होती है। डॉक्टर ने तभी कहा कि कुछ भी करवा लो लेकिन अब यह ठीक नहीं हो सकता है। उसके बाद भी मुझे अमरावती, नागपुर और बैतूल

में दिखाया पर आँखों का कोई इलाज नहीं हो पाया।

इसके बाद मैंने पढ़ाई छोड़ दी – घर में ही रहने लगा और खेत में जाकर काम करने लगा। इस समय तक पूरी तरह से अन्धत्व नहीं आया था। मुझे थोड़ा-थोड़ा दिखता था जिससे मैं खुद से चलने-फिरने का काम कर लेता था। 3-4 साल तक यूँ ही चलता रहा और फिर धीरे-धीरे मुझे पूरी तरह दिखना बन्द हो गया। मेरी आँखों की रोशनी इतनी धीरे-धीरे गई कि मुझे खुद ही समझ नहीं आया कि कब मुझे पूरी तरह से दिखना बन्द हो गया।

पढ़ाई तो छोड़ दी थी, अब घर पर ही रहता था तो मैं अक्सर घर के सामने दर्ज़ी की दुकान में जाकर बैठने लगा। एक दिन दर्ज़ी की दुकान में एक सज्जन आए, केशवराव माकोड़े। वे दर्ज़ी के पास कपड़े सिलवाने के लिए आए थे। माकोड़ेजी पाढर के दृष्टिहीन विद्यालय में शिक्षक थे। इनके कार्यक्षेत्र में आठनेर आता था और वे इस क्षेत्र के दृष्टिहीनों एवं विकलांगों के बारे में जानकारी इकट्ठा कर उन्हें संस्था तक पहुँचाते थे। स्थानीय दर्ज़ी के माध्यम से उन्हें मेरे बारे में पता चला तो इन्होंने मुझे दर्ज़ी की दुकान में मिलने बुलाया। मुझे बताया कि दृष्टिहीनों के विद्यालय में पढ़ाई और कुर्सी बुनाई होती है और मुझे साथ

चलने को कहा। मेरे मन में यह धारणा थी कि अन्धे लोग तो गाना बजाना करते हैं, तो मैंने पूछा, "क्या वहाँ संगीत नहीं सिखाते?" माकोड़े सर ने बोला, "नहीं, यहाँ संगीत तो नहीं है पर तुम पढ़ना-लिखना सीख सकते हो।" मैंने सोचा कि पढ़ने-लिखने से एक अन्धे को क्या लाभ होगा और मैंने जाने से मना कर दिया। उनके काफी कहने के बाद भी मैं नहीं गया। इसका एक कारण यह भी था कि उस समय घर से मेरा काफी लगाव भी था।

एक साल बाद वही सर अचानक फिर दर्ज़ी की दुकान में आए और मुझे फिर साथ चलने को कहा। पर इस बार परिस्थितियाँ अलग थीं। इस दौरान मेरा घर के लोगों से काफी मनमुटाव चल रहा था और मैं खुद भी तनावग्रस्त था। अक्सर मैं घर में लोगों को काम के लिए काफी टोका करता था कि अरे यह काम ऐसा क्यों हुआ, यह समय पर पूरा कर देना था। मुझे हर चीज़ की बहुत चिन्ता रहती थी और मैं लोगों को काफी बोलता था तो उन्हें कभी-कभी यह लगता था कि खुद तो देख नहीं सकता और हमें काम के लिए कहता रहता है। अतः इस बार मैंने निर्णय कर लिया कि मैं अब चला ही जाऊँगा। मैं स्वभाव से काफी ज़िद्दी था, एक बार जो ठान लिया वो करके ही रहता था। मैंने घर वालों से कह दिया, "वैसे भी मेरी कोई आवश्यकता तो है नहीं, तो मुझे जाने दो।"

पर घर वालों का काफी लगाव था मुझसे। कोई मुझे जाने नहीं देना चाहता था। मैंने कहा, "मुझे तो जाना है तो मेरे कपड़े धो दो।" पर कोई मेरे कपड़े नहीं धो रहा था, ये सोचकर कि कहीं मैं सचमुच चला ही न जाऊँ। पर आखिरकार मैं घर से निकल ही गया।

सन् 1997-98 में जब पाढर की संस्था में गया तो शुरुआत में कुछ दिन तो बिलकुल भी अच्छा नहीं लगा। फिर धीर-धीरे वहीं के माहौल में रम गया। दो घण्टे ब्रेल की कक्षा में रहता था। चूँकि मैंने पाँचवीं तक पढ़ना-लिखना सीखा था इसलिए ब्रेल सीखने में मुझे ज़्यादा तकलीफ नहीं हुई। मैं जल्दी ही सीख गया। मेरे शिक्षक ने कहा कि तुम सीख तो गए परन्तु तुम जितना ज़्यादा पढ़ोगे, उतनी ज़्यादा तुम्हारी गति बढ़ेगी ब्रेल पढ़ने में।

फिर लंच के बाद मुझे कुर्सी बुनाई सेक्शन दिया गया। 14-15 महीने तक यही चलता रहा और इस दौरान कुर्सी बुनाई के अलावा मैं हैण्डलूम सेक्शन में चादर, निवाड़, बैग, टॉवेल आदि भी बनाने लगा।

इस दौरान मेरे भाई मुझसे मिलने आए। इतने महीनों में वे पहली बार मुझसे मिलने आए थे। वो जब आए तब मैं हैण्डलूम सेक्शन में चादर बुनाई कर रहा था। मुझे देखकर भैया ने काफी सरलता से कहा, "तू जो कर रहा है, क्या उससे तेरा जीवन सुधर जाएगा?" उन्होंने तो बस यूँ ही कह दिया पर उस क्षण मेरे अन्दर काफी

कुछ घटित हुआ। क्योंकि उस क्षण मैंने वास्तव में सोचा कि मैं क्या कर रहा हूँ। अब तक तो मुझे लग रहा था कि मैं तो काफी कुछ कर रहा हूँ, पर उस एक क्षण में सब कुछ बेमानी लगने लगा। हैण्डलूम का काम मैं तब तक ही कर सकता था जब तक संस्था में हूँ। घर से तो इस तरह का काम नहीं किया जा सकता। फिर भैया ने कहा, "तू मोटर वाइंडिंग का काम सीख। वह तुझे बाद में भी काम आएगा।" मुझे भैया कि यह बात वाकई अच्छी लगी। इस दौरान संस्था के कुछ दोस्त अहमदाबाद से मोटर वाइंडिंग सीखकर आए थे और उन्होंने उसका काम शुरू किया था।

उस दिन के बाद से मैंने हैण्डलूम सेक्शन में जाना छोड़ दिया और मोटर वाइंडिंग के सेक्शन में जाना शुरू कर दिया। मेरे शिक्षक बार-बार आकर कहते भी थे कि तुम्हें हैण्डलूम सेक्शन में रखा है, तुम्हें तो वहाँ रहना चाहिए। पर मैं वहीं बैठा रहता। मेरा मन ही हैण्डलूम के काम से हट गया था। फिर मैंने मोटर कॉइल बदलना और जली मोटर को सुधारना सीख लिया।

पर जब पता चला कि अहमदाबाद में जाकर प्रशिक्षण के लिए मैट्रिक पास होना ज़रूरी है तब मैंने आगे पढ़ाई करने का सोचा। संस्था में मेरा एक दोस्त भी पढ़ता था – संतोष बारस्कर। हम दोनों ने पाँचवीं तक साथ में पढ़ाई की थी। वह मुझसे पहले से ही इस संस्था में था। संतोष के दोस्तों से हमें इन्दौर की एक संस्था के बारे में पता चला कि वहाँ पर

ऑडियो और टेप-रिकॉर्डर के साथ पूरा कोर्स करने को मिलता है। फिर क्या था, हमने मन बना लिया कि अब तो इन्दौर जाना ही है। दो महीने बाद अप्रैल में इन्दौर जाने की योजना थी तो मैंने घर में चिट्ठी डाल दी कि मैं इन्दौर जा रहा हूँ। जिस दिन चिट्ठी मिली, उसके अगले ही दिन मम्मी-पापा, दोनों आ गए और मुझे इन्दौर न जाकर, घर चलने का आग्रह करने लगे। पर एक बार मैं जो ठान लेता था, उसे पूरा करके ही छोड़ता था।

मैं और संतोष अप्रैल 1998 में इन्दौर निकल गए। इन्दौर में हम मध्यप्रदेश दृष्टिहीन कल्याण संघ संस्था में रहे। यहाँ हमारा प्रमुख लक्ष्य पढ़ाई पूरी करना था। पहले हमने 8वीं प्राइवेट से की और फिर 9वीं से रेगुलर पढ़ाई की। मैंने पहले सोचा कि मोटर वाइंडिंग की ट्रेनिंग के लिए 10वीं तक की पढ़ाई कर लूँगा और फिर छोड़ दूँगा पर पढ़ते-पढ़ते मेरा मन पढ़ाई में लग गया और मैंने 12वीं तक पढ़ाई पूरी कर ली। इस दौरान पढ़ाई के साथ हमने चेयर बुनने की ट्रेनिंग की फिर टेक्निकल में आ गए जिसमें नट, बोल्ट, पेपर काटने की मशीन, दोना-पत्तल आदि बनाया जाता था। परन्तु ये सारे काम हमारी प्राथमिकता में नहीं थे। हमारा मुख्य लक्ष्य तो पढ़ना ही था।

इसी संस्था में 12वीं के बाद छह महीने तक टेलीफोन ऑपरेटर की ट्रेनिंग की। फिर मैंने और संतोष ने सोचा कि हम अहमदाबाद में फिज़ियोथेरेपिस्ट की ट्रेनिंग करेंगे, इसलिए हम दोनों अहमदाबाद गए। पर वहाँ पर मेरिट के आधार पर एडमिशन हो रहा था। 12वीं में मेरा 52 और संतोष का 49 प्रतिशत था। हमारा एडमिशन नहीं हो पाया क्योंकि वहाँ कट ऑफ 65 प्रतिशत था। पर उसी संस्था के एक सज्जन ने कहा कि हमारा मोटर वाइंडिंग में एडमिशन हो जाएगा और हम 10 जून तक आकर एडमिशन ले लें। हमने सोचा कि शायद किस्मत में मोटर वाइंडिंग ही लिखा है तो इसमें ही एडमिशन ले लेते हैं। पर वह भी हमारे नसीब में नहीं था। 10 को अन्तिम तारीख थी और 8 या 9 को हमें निकलना था। उस दौरान बहुत तेज़ बारिश हुई और काफी सारी ट्रेन रद्द हो गईं और हम 10 तारीख तक अहमदाबाद पहुँच ही नहीं पाए।

2003 में मैं वापस बैतूल आ गया। यहाँ आया तो कुछ दोस्तों से पता चला कि पोस्ट मैट्रिक बालक छात्रावास में दृष्टिहीनों के लिए पाँच सीट आरक्षित हैं और एक सीट खाली है। तो मैंने तुरन्त फॉर्म भरा और मेरा एडमिशन हो गया। मैं इतिहास, राजनीति और समाजशास्त्र में बी.ए. करने लगा और पढ़ाई में मेरा मन लगने लगा। पर फिर अगले ही साल मेरे घर में एक बहुत ही दुखद घटना हो गई, मेरी भाभी का देहान्त हो गया। उस समय उनका बच्चा तीन माह का था। पूरी घर की व्यवस्था गड़बड़ा गई। घर की हालत बहुत ही दयनीय हो गई थी

और मुझे बीच में ही अपनी पढ़ाई छोड़नी पड़ी। बड़े भैया भी काफी सदमे में थे। खेत में खरीददारी और बोहनी से सम्बन्धित काम मैं ही करने लगा।

फिर इस घटना के एक साल बाद 2005 में मैं वापस इन्दौर गया और अहिल्या बाई विश्वविद्यालय में एडमिशन लेकर फिर से बी.ए. की पढ़ाई शुरू की। पढ़ाई के दौरान मैं उसी संस्था में रहता था जहाँ से मैंने 12वीं तक पढ़ाई की थी। जब पढ़ाई पूरी हो गई तो संविदा भर्ती निकली और मैंने परिक्षा दी। इसमें मेरा 127वाँ रैंक आया और तब मैंने सोच लिया कि अब यह मौका हाथ से नहीं जाने देना है। काफी मेहनत की, फॉर्म भरा और 2009 में शक्तिपुरा प्राथमिक शाला, सुखतवा में मेरी नियुक्ति हो गई। मैंने थोड़ी राहत महसूस की।

पर यह तो एक नए संघर्ष की शुरुआत थी। जब मैं शाला में आया तो मुझसे पूछा गया कि मैं कौन-सी कक्षा को पढ़ाऊँगा। अब इन्सान तो स्वार्थी होता है, पहले अपना स्वार्थ देखता है। मैंने भी सोचा कि कक्षा 4-5 तक तो बच्चे पढ़ना-लिखना सीख जाते हैं तो मुझे इनके साथ ज़्यादा मेहनत नहीं करनी पड़ेगी। यह सोचकर मैंने कहा कि मैं कक्षा 4-5 को पढ़ाऊँगा। जब मैं पहली बार कक्षा में गया और बच्चों को पढ़ने के लिए कहा तो मुझे समझ आया कि काफी सारे बच्चों को पढ़ना-लिखना ही नहीं आता। मैं चिन्ता में पड़ गया, यह सोचकर कि अब मैं इनके साथ कैसे काम कर पाऊँगा। इन्हें कैसे पढ़ाऊँगा? इसके बाद मैंने छुट्टी ली और काफी सोचा कि अब क्या करूँ। नौकरी कर रहा हूँ तो बच्चों को सिखाना तो पड़ेगा ही और कुछ काम भी करना होगा। फिर मुझे एक विचार आया और मैंने शाला जाकर सर को छुट्टी के लिए आवेदन दिया और मैं इन्दौर चला गया। जिस संस्था में मैं पढ़ा था वहाँ जाकर मैं कक्षा 3, 4 और 5 की भाषा और पर्यावरण की किताबें लेकर आया और उसके बाद फिर बच्चों को पढ़ाना शुरू किया।

***

वर्तमान में अभिमन्यु सर सुखतवा में अपनी पत्नी और बेटे क्रिश के साथ रह रहे हैं। मैं जितनी बार भी शक्तिपुरा शाला गई हूँ, अभिमन्यु सर हमेशा मुझे बच्चों के साथ दिखाई दिए हैं। जहाँ शाला के अन्य शिक्षक हमेशा किसी-न-किसी तनाव में दिखते हैं, हमेशा शिकायतों की झड़ी लगा देते हैं वहीं अभिमन्यु सर के मुँह से मैंने कभी कोई शिकायत नहीं सुनी कि बच्चे ऐसा करते हैं, पालक ऐसे हैं, शासन यह कर रहा है। हर बार अभिमन्यु सर शान्ति से बच्चों के बीच बैठे मिलते। अभिमन्यु सर से जुड़े कुछ ऐसे अनुभव भी हैं जिन्होंने मुझे यह सोचने पर मजबूर किया कि कौन देख सकता है और कौन दृष्टिहीन है।

एक बार शाला बन्द होने के बाद मैं वापस केसला जाने लगी। उस दिन अभिमन्यु सर का भतीजा किन्हीं कारणों से आने में लेट हो रहा था तो मैंने सर से कहा, "चलिए, मैं जा ही रही हूँ तो आपको भी छोड़ देती हूँ।" सर गाड़ी पर बैठ गए। मैंने उन्हें बैठा तो लिया पर फिर खुद ही सोचने लगी कि अब कैसे पता चलेगा कि इनका घर कहाँ है और कौन-सा है। परन्तु थोड़ी ही देर में मुझे ऐसा लगने लगा कि जैसे मैं उन्हें नहीं बल्कि वे मुझे ले जा रहे हैं। गाड़ी पर बैठे-बैठे वे बताते जा रहे थे - अब यहाँ से राइट लो, अब एक मन्दिर आएगा। मैं बार-बार हैरान हो जाती कि आखिर इन्हें कैसे पता चल रहा है कि कब राइट आएगा और कब मन्दिर आने वाला है। मैं बार-बार पूछकर कन्फर्म भी कर रही थी पर सर तो आत्मविश्वास से भरे हुए कहते, "हाँ, यहीं से राइट है। हाँ, यही वाला मन्दिर है।" कुछ चीज़ें समझ से परे हैं...

एक बार मैं शाला में शिक्षकों के लिए किताबें लेकर गई, परन्तु दोनों शिक्षकों ने यह कहकर किताबें रखने से मना कर दिया, "अरे, हमें तो शाला के कामों से फुर्सत ही कहाँ है कि हम ये सब पढ़ें।" परन्तु जब अभिमन्यु सर ने सुना कि मैं किताबें लेकर आई हूँ तो उन्होंने तुरन्त मुझसे किताबों के नाम पूछे और प्रेमचंद की कहानियों की सभी किताबें रख लीं। उस दिन मैं खुद पर काफी शर्मिन्दा भी हुई, क्योंकि मैं उन्हें दृष्टिहीन समझकर उनसे किताबों की चर्चा नहीं कर रही थी परन्तु बाकी शिक्षकों की बजाय सिर्फ उन्होंने ही किताबें रखीं। बाद में किताबें पढ़कर उन्होंने मुझे लौटाईं भी, चर्चा भी की।

एक बार बच्चों के सन्दर्भ में उनसे बात कर रही थी तो उन्होंने काफी सहजता से कहा, "बच्चों का व्यवहार तो हमारे व्यवहार पर निर्भर करता है। इन बच्चों ने ही मुझे काफी कुछ सिखाया है और पढ़ाने में मेरी मदद की है।"

यह कथन आज तक मैंने कभी किसी नेत्र-धारी शिक्षक के मुँह से नहीं सुना। शायद आँखें होना ही देखना नहीं है। एक-दूसरे की भावनाओं को समझना,

महसूस करना, एक-दूसरे की ज़रूरतों का आभास होना भी देखना है। जिनके पास आँखें हैं, शायद वे ये सब नहीं देख पाते हैं। क्योंकि आप सिर्फ वही देखते हैं जो आपको नज़र आता है। परन्तु अभिमन्यु सर वह देख पाते हैं जो नज़र नहीं आता और जिसे देखने के लिए आँखों की ज़रूरत भी नहीं – वे हैं बच्चों के मन व भावनाएँ...

नेहा रूपड़ा: एकलव्य के साथ छत्तीसगढ़ के बिलासपुर ज़िले में एवं मध्यप्रदेश के होशंगाबाद ज़िले में काम का अनुभव। यह लेख जश्ने-तालीम कार्यक्रम के तहत होशंगाबाद ज़िले के केसला ब्लॉक में काम के दौरान लिखा गया।

सभी चित्र: हीरा धुर्वे: भोपाल की गंगा नगर बस्ती में रहते हैं। चित्रकला में गहरी रुचि। साथ ही 'अदर थिएटर' रंगमंच समूह से जुड़े हुए हैं।

— — — — — — — — —